नील गाय की आँखें

क्रम

अँगूठी	09
या देवी सर्वभूतेषु	22
एक पैर वाला शेर	41
किरचों पर सजा इन्द्रधनुष	54
रामलीला	70
उत्सव के रंग	77
परिचय	93
एक बेताल कथा और	110
दर्द	119
नीलगाय की आँखें	137

नीलगाय की आँखें

दृष्टि-सम्पन्नता और परिवेश-प्रामाणिकता की कहानियाँ

इधर की कुछ कहानियों में अनुभवों की विश्वसनीयता का आग्रह इतना मुखर हुआ कि वे संस्मरण या आपबीती का भ्रम देती हैं। 'अति' का दूसरा छोर उन कहानियों में द्रष्टव्य है, जो 'समय की प्रामाणिकता से बोझिल है और जो कहानियाँ कम 'रिपोर्ताज' अधिक लगती हैं। पहली प्रकार की कहानियाँ यदि अंतर्मुखता और अस्पष्टता की शिकार हैं तो दूसरे किस्म की कहानियाँ ज़रूरत से ज्यादा बोलती हैं। ऐसे में वे कहानियाँ सर्वाधिक आश्वस्त करती हैं, जिनमें 'परिवेश की प्रमाणिकता' के साथ मानवीय संबंधों और कोमल अनुभूतियों के उष्ण और जीवंत स्पर्श को भी कथात्मक रचाव दिया गया है। नमिता सिंह के तीसरे कहानी संग्रह 'नीलगाय की आँखें' में संकलित अधिकतर कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

हालांकि 'संकलन' के 'फ्लैप' पर कथा-साहित्य को महिला लेखन और पुरुष-लेखन के बीच बांटने के प्रयास को बेमानी कहा गया है, फिर भी यह निश्चित है कि एक कथा-लेखिका आज की नारी की उलझनों और जटिलताओं को जितनी बारीकी से देख और लिख पाती है, उतनी बारीकी पुरुषों के कथा-साहित्य में कम मिलती है। यह गौरतलब है कि इस संग्रह की 'अंगूठी', 'या देवी सर्वभूतेषु', 'परिचय', 'दर्द' आदि कहानियाँ आज की नारी की नियति पर केंद्रित हैं। 'अंगूठी' कहानी के माध्यम से लेखिका ने दर्शाया है कि नारी-शिक्षा, नारी-उत्थान के सारे प्रयास रोमांटिक कार्यवाईयां मात्र हैं। बहुत से मध्यवर्गीय परिवारों में नारी के प्रति रूढ़िवादी दृष्टि जस की तस है और लड़कियों -नारियों को दूसरे-तीसरे दर्जे के नागरिकों की हैसियत मिली हुई है। 'अंगूठी' को पढ़ते समय जैनेन्द्र की 'पाजेब' का स्मरण हो आता है। अपने पूर्व निर्धारित निष्कर्षों और विचारों को थोपने का भाव दोनों कहानियों में है। दोनों कहानियों में एक 'बुआ' है। 'पाजेब' में बुआ की सूचना ने 'तनाव' को खत्म किया है लेकिन अंगूठी में बुआ की भूमिका विध्वंसात्मक है। अंत में आकर पाजेब एक सुखांत रचना बन गयी है, जबकि 'अंगूठी' में हादसे की परिणति मीरा के आत्मघात् में हुई है। कहानी लेखिका ने बहुत कुशलता से दर्शाया है कि यह 'आत्महत्या' नहीं हत्या है। बीच-बीच में होश आने पर मीरा की माँ का यह कथन-'मार डाला है मेरी बच्ची को। खा गयी डायन उसे'। जो डायन 'मीरा' को खा गयी है, वह मध्यवर्गीय सोच और आर्थिक विवशता की डायन है। यह 'डायन' देवयानी (या देवी सर्वभूतेषु) को भी खा जाती, यदि वह समय पर चेत न जाती। प्रवृत्ति और विधान के द्वंद्व को झेलती हुई देवयानी को सही वक्त पर याद आ जाता है, ...मैं सिर्फ देवयानी नहीं और भी कुछ हूँ। मेरी समस्त भुजाएँ फिर सक्रिय हैं.... मेरा खड्ग.... मेरा शंख, मेरा समस्त पूर्ण जाग्रत है...।'' यह अवतरण संकेत देता है कि नारी-मुक्ति का भाव नारी के भीतर से भी जगना चाहिए।

'या देवी सर्वभूतेषु' को नमिता सिंह की ही नहीं नवें दशक की अच्छी कहानियों में गिना जाना चाहिए। शिक्षित नारी के रूढ़िवादी परिवार में मिसफिट होने और उत्पीड़ित होने के बाद अंततः विवाह-विच्छेद की थीम पर बहुत पहले से कहानियाँ लिखी जा रही हैं, लेकिन कहानी लेखिका ने इस 'थीम' को महिषासुर-मर्दिनी के मिथक से जोड़ते हुए जो प्रभाव उत्पन्न किया है वह प्रशंसनीय है। 'पुनर्नवा' में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मिथक की चर्चा किंचित् पृथक संदर्भ में की है। नमिता सिंह ने इसे नारी की जड़ता और पस्तहिम्मती को तोड़ने और अपनी 'अस्मिता' को बनाये रखने की प्रेरणा के तौर पर प्रस्तुत किया है। दद्दा महिषासुर-मर्दिनी के 'बकरी' बन जाने के हादसे को क्रूर होकर बयान करते हैं। वह क्रूरता देवयानी को 'झनझना' देने और सुन्न संवेदना को जगाने में समर्थ है। यदि दद्दा बराबर कोंचते नहीं रहते तो देवयानी की नियति मीरा से अलग न होती। 'परिचय' और 'उत्सव के रंग' के केन्द्र में स्थित नारियाँ 'देवयानी' का परिपक्व संस्करण है। चारुलता का व्यक्तित्व, पुरुष के नजरिये से तेज तर्रार है। घर में खपने के लायक नहीं। लेकिन कहानी के अंत में शालिनी को ठीक ही लगता है कि उसके पति ने चारुलता के बारे में कुछ नहीं जाना या समझा था। 'घर' और 'बाहर' में संतुलन बनाये रखने में सफल चारू, अन्याय-उत्पीड़न के विरोध

में सक्रिय चारू, 'लेडीज़ क्लब' को सोशल वर्क की प्रेरणा देती चारू से शालिनी का पहली बार परिचय होता है। चारुलता आधुनिक भारतीय नारी का प्रतीक चरित्र है जो कहीं अस्वाभाविक नहीं लगता। नारी का एक दृढ़ और आश्वस्तकारी रूप 'उत्सव के रंग' में भी है, जो कभी पथरीली चट्टान सा संबल बनती है और कभी पिघलकर अंदर तक सराबोर करती है। 'हर घड़ी हर पल, मुकबाले के लिए तैयार' रहने वाली नारी अनुराग के एकांतिक क्षणों में 'फागुन का गुलाल' बन जाती है। 'उत्सव के रंग', 'परिचय' आदि कहानियाँ जन-आंदोलनों से जुड़ी और स्वावलंबी महिलाओं के बारे में रूढ़िबद्ध इस धारणा को निरस्त करती है कि ये महिलाएँ अच्छी गृहिणी या सहधर्मिणी नहीं बन सकतीं।

'रामलीला' शीर्षक कहानी आकार में छोटी है, इसमें कोई महत्वपूर्ण घटना भी नहीं घटती, लेकिन नारी मनोविज्ञान के लिहाज से महत्वपूर्ण है। जिस समाज में सारे विधि-निषेध लड़कियों-युवतियों के लिए हैं, लड़के-पुरुष परम स्वतंत्र हैं। उस परिवेश में दीपा का यह पूछना-''तुम राम नहीं बन सकते थे? बोलो! राम क्यों नहीं बने तुम। और कुछ नहीं था तो रावण ही बन जाते' न केवल अतुल अपितु पाठकों को भी 'अवाक्' कर देता है। लेकिन प्रबुद्ध पाठक अतुल की तरह ''धत्तेरे की'' कहकर चुप नहीं हो सकता। उसे दीपा के आक्रोश में कई व्यंजनाएँ महसूस हो सकती हैं। निम्नवर्गीय नारी 'रमिया' पर केंद्रित कहानी 'दर्द' इसलिए भी गौरतलब है कि इसमें दलित कहे जाने वाले तबके के अंतर्विरोध और नास्ति मूल्य उभर कर सामने आये हैं। रमिया अपने बेटों और पति तक के लिए असहनीय इसलिए है कि वह जब-तब कटु सत्य को रेखांकित कर देती है। वह आचरण के दो मुंहेपन पर प्रहार करते हुए कहती है 'वाह-वाह! क्या न्याय है? धन्न हो? तुम चमार की लौंडिया भगा लाओ तो सब ठीक। बहुत बड़ा काम। तुम्हारी लौंडिया किसी के साथ चली जाये तो बहुत गलत, पाप... क्या न्याय है।'' रमिया की जान फिर भी बच जाती है लेकिन 'एक बेताल कथा और' की कल्पना की त्रासदी लोमहर्षक है। 'अंगूठी' की मीरा की तरह 'कल्पना' भी मार दी जाती है, स्वतंत्रता से सांस ले सकने की उसकी इच्छा धरी रह जाती है। कहानी के अंत में बेताल पूछता है कि कल्पना की मृत्यु के लिए कौन जिम्मेदार है? इस कहानी में लेखिका ने समूची समाज-व्यवस्था को कठघरे में खड़ा कर दिया है। ये सभी कहानियाँ 'त्रासदी' का भावुक बयान न होकर एक किस्म की वैचारिक ऊर्जा से दीप्त हैं।

'एक पैर का शेर' अलग तेवर की कहानी है और राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु आम आदमी के मनचाहे इस्तेमाल की विसंगति का बयान करती है। 'नीलगाय की आंखे' और 'किरचों पर सजा इंद्रधनुष में अलग-अलग संदर्भों के बावजूद एक साम्य है कि ये उच्च मध्य वर्ग की महत्वाकांक्षा जन्य विकृतियों पर अंगुली रखती हैं। रूपाजी ने किरचें बटोर ज़िंदगी के खूबसूरत खोने का भ्रम पाल लिया है और प्रीतीश भी अपने बिखरे दर्द के टुकड़ों को सहेजता हुआ सुख को आत्मा की गहराइयों में महसूसता है। लेकिन जिस तरह रूपाजी के 'केलिडोस्कोप' की एक किरच बाहर निकल आयी है और लगातार चुभती है, उसी तरह प्रीतीश को भी परम आनंद के क्षणों में लगता है, कुछ भीतर से दरक रहा है। लेकिन दोनों कहानियों की आखिरी परिणति भिन्न है। घायल नीलगाय की बोलती आंखों की याद प्रीतीश को सहज और मानवीय बना जाती है जबकि रूपा जी अपने कथित इन्द्रधनुष की रंगीन दुनिया के उबर नहीं पातीं। दोनों कहानियाँ स्वार्थ, अहं, विलाप आदि नास्ति मूल्यों को नकारती हुई कुंठायुक्त और सहज जीवन का औचित्य प्रतिपादित करती है। संग्रह की अधिकतर कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन से संबद्ध होते हुए भी मध्यवर्गीय दृष्टि से अनुशासित नहीं हैं।

'खुले आकाश के नीचे' और 'राजा का चौक' के बाद नमिता सिंह का यह तीसरा संग्रह न केवल वैचारिक ऊर्जा, कथ्य-शिल्प की संश्लिष्टता और अंततः एक स्पष्ट निर्णयशीलता के लिए उल्लेखनीय है, अपितु 'कहानीपन' को बनाये रखने की सफलता की दृष्टि से भी आश्वस्त करता है।

वेदप्रकाश अमिताभ